चतुर्थ प्रकरण

कल्पना विधान

कल्पना की सृजन प्रक्रिया : मनुष्य में अनेक विशेषताएं हैं । कल्पना करना भी उसकी एक विशेषता है । हम बचपन में ही अपने पिता की छड़ी लेकर रंग पर सवारी करते हुए मोटर का आनन्द लेते हैं । उसको मोटर समझने के लिए हम मोटर की तरह आवाज़ भी करते हैं । छः महीने के बच्चे के विवाह के दिन की कल्पना करके माता के मुंह से विवाह के मांगलिक गीत बरसने लगते हैं । इस प्रकार जब हम वर्तमान के यथार्थ से संतुष्ट नहीं हो पाते हम तब किसी कल्पित यथार्थ की सृष्टि करते हैं । लड़के की मोटर यात्रा और मां की गीतिधारा इसी कल्पित यथार्थ की सृष्टि हैं ।

ज्यों - ज्यों समय व्यतीत होता जाता है त्यों-त्यों इस दृश्य जगत् का भी विराट चित्र मनुष्य के दिमाग में बसने लगता है । समय समय पर वह इन्हीं चित्रों में कुछ मनमानी हेर फेर करके एक नया चित्र बना लेने का प्रयास करता है । मनुष्य के इसी प्रयास का परिणाम काव्य का कल्पना विधान भी है । डा० श्यामसुन्दर दास ने कल्पना पर विचार करते हुए कहा है -- "दार्शनिकों ने सब प्रकार के ज्ञान की पांच अवस्थाएं मानी हैं -- परिज्ञान , स्मरण , कल्पना , विचार और सहज ज्ञान । सबसे पहले हमें बाह्य पदार्थों का ज्ञान अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है । जब हम किसी मनुष्य के पास जाते हैं , तब हमारे नेत्रों के द्वारा उसका प्रतिबिंब हमारे मन पर पड़ता है -- इस प्रकार के ज्ञान को परिज्ञान कहते हैं । यदि हमने उस मनुष्य को ध्यान से देखा है तो पीछे से आवश्यकता पड़ने पर स्मरण शक्ति की सहायता से उस मनुष्य के रूपादि का कुछ ध्यान कर सकते हैं । मान लीजिए कि उक्त मनुष्य एक अंग्रेज़ है । हमने एक सन्यासी को भी देखा है और हमें उस सन्यासी के रूप , आकार तथा उसके वस्त्रों के रंग का स्मरण है । अब हम चाहें तो अपने मन में उस अंग्रेज़ का सूट-बूट छीनकर उसे

सत्यासी का गेरुआ वस्त्र पहना सकते हैं और तब हमारी मानसिक दृष्टि के सामने एक अंग्रेज़ सन्यासी का चित्र उपस्थित हो जाता है। मन की एक विशेष प्रक्रिया से स्मरण शक्ति द्वारा संचित अनुभवों को विभक्त कर और फिर उनके पृथक् पृथक् भागों को इच्छानुसार जोड़कर हमने मन में एक नवीन व्यक्ति कर ली जिसका अस्तित्व बाह्य जगत् में नहीं है। मन की इस क्रिया को कल्पना कहते हैं[1]।

बाबू श्यामसुन्दर दास की इस उक्ति से स्पष्ट है कि कल्पित वस्तु नवीन हो सकती है किन्तु उसके अवयव नये नहीं होते। वे तो इसी दुनिया के होते हैं और जाने समझे होते हैं। कल्पना पर विचार करते हुए मैकडुगल महोदय ने कहा है --

"इमैजिनेशन इज़ दैट मेन्टल प्रोसेस वाई ह्विच वी क्रिएट सम न्यू थिंग्स आन दि बेसिस आफ आवर पास्ट एक्सपीरियेन्सेज[2]।

अर्थात् कल्पना वह मानसिक क्रिया है जिससे हम अपने विगत जीवन के अनुभवों के आधार पर किसी नई वस्तु का निर्माण करते हैं। उडवर्थ महोदय का भी कहना है --

"इन इमैजिनेशन वी क्रिएट सम न्यू थिंग्स आन दि बेसिस आफ आवर पास्ट एक्सपीरियेन्सेज़। दि कैसल इज़ मेड इन एयर बट दि ब्रिक्स आर फाइन्ड आन दि ग्राउन्ड[3]।

अर्थात् वायुमण्डल में अट्टालिका खड़ी की जाती है किन्तु आधार स्वरूप ईंटें पृथ्वी पर ही पाये जाते हैं। कल्पना प्रक्रिया से एक नई वस्तु सामने आ जाय किन्तु उस वस्तु के अवयव परिचित ही होते हैं। कल्पना के सम्बन्ध में एक भ्रान्त धारणा चल पड़ी है कि यह जीवन से दूर आकाश की बात है। लेकिन मैं जोरदार शब्दों में कहना चाहूंगा कि कल्पना का मूल जीवन और जगत् से सम्बद्ध है। कल्पना भी एक सत्य है।

डा० नगेन्द्र लिखते हैं --- "कल्पना प्रत्यक्ष के पथ का अनाश्रित नहीं हो सकती। हम उस वस्तु की कल्पना नहीं कर सकते जिसके स्वरूप का या जिसके रूप के पृथक् अवयवों

---

१. साहित्यालोचन, पृ० २०८-९
२. जनरल साइकालोजी --मैकडुगल।
३. जनरल साइकालोजी -- उडवर्थ।

का हमने साक्षात्कार नहीं किया है। इसीलिए तो कल्पना की तुलना उस पक्षी से की जाती है जो सुदूर आकाश में उड़ता हुआ भी पृथिवी पर दृष्टि बांधे रहता है[1]। डा० नगेन्द्र इसी सम्बन्ध में फिर कहते हैं -- "मन प्रत्यक्ष से सम्बद्ध किसी वस्तु या व्यापार को उसके असली रूप में कहकर सन्तुष्ट नहीं होता। वह उस चित्र को अपने अनुकूल गढ़ना चाहता है और इस प्रकार अपनी रुचि के अनुसार काट छांट करता है। इसी को विक्टर कज़िन ने 'अनजाने में प्रकृति की आलोचना' कही है। पश्चिमी साहित्य शास्त्र में मन का यह कार्य 'आदर्शीकरण' के नाम से प्रसिद्ध है[2]"।

कल्पना विधान का प्रयोजन : किसी भाव की अभिव्यक्ति को मार्मिक बनाने के लिए कवि काव्य में कल्पना विधान करता है। वह एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जिसके कारण उसकी मार्मिकता बढ़ जाती है। उसी चित्र निर्माण को काव्य में 'बिंब विधान' भी कहते हैं। कुछ लोग कल्पना का उद्देश्य कल्पना ही मानते हैं। लेकिन यह बात है नहीं। कल्पना का उपयोग इसी में है कि वह कवि की अभिव्यक्ति की मार्मिकता को तीव्रता प्रदान करते हुए रसानुभूति में योग दे। इधर पश्चिमी अनुकरण पर कुछ लोग 'बिंब विधान' को ही काव्य का साध्य मानने लगे हैं। उन लोगों का कहना है कि किसी कल्पित चित्र को प्रस्तुत कर देने में ही कवि के कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है। वे लोग उस चित्र को जगत् जीवन के अनुभव से सम्बद्ध नहीं मानते। लेकिन विचारणीय यह है कि कवि कोई मशीन नहीं है। वह कोई सांचा नहीं है जो चित्र गढ़ता चला जायेगा। चित्र गढ़ने का पहले उसे भावाकुलता की दशा से गुजरना पड़ेगा। अपनी भावाभिव्यक्ति को मार्मिक बनाने के लिये ही वह बिंब विधान करता है। जो लोग ताजमहल के रूप की प्रशंसा करते हैं, उन्हें यह भी याद रखना चाहिये कि इस भव्य भवन की जड़ में एक प्रणय-शय्या बिछी हुई है। एक धारणा ऐसी भी है कि कवि बिंब विधान कर देता है और उसके बाद भाव आ जाते हैं। किन्तु सत्य तो यह है कि कवि का बिंब विधान किसी भाव के ही सहारे आगे बढ़ता है। बिना भावसूत्र का सहारा पाये बिंब विधान इंच भर आगे नहीं बढ़

---

१. विचार और अनुभूति, पृ० २१

२. वही

सकेगा । विंब विधान को ही कविता का साध्य मान लेना कुछ वैसे ही है जैसे कि मामा के घर जाने के लिए उतावले बच्चे अज्ञानतावश स्टेशन को ही मामा का घर मान लेते हैं । आचार्य शुक्ल ने कविता और कल्पना पर विचार करते हुए लिखा है -- "योरपीय साहित्य मीमांसा में कल्पना को बहुत प्रधानता दी गई है । है भी यह काव्य का अनिवार्य साधन । पर है साधन ही, साध्य नहीं[१] "।

शुक्ल जी ने काव्य को भावयोग कहा है । काव्य को कला कहने वाले लोगों से वे चिढ़ते थे । चिन्तामणि में शुक्ल जी झुंझला कर कहते हैं -- "सारांश यह है कि कला शब्द के प्रभाव से कविता का स्वरूप तो हुआ सजावट या तमाशा और उद्देश्य हुआ मनोरंजन या मन बहलाव । यह कला शब्द आजकल हमारे यहां भी साहित्य चर्चा में बहुत जोरों से हो रहा है । इससे न जाने कब पीछा छूटेगा ? हमारे यहां के पुराने लोगों ने काव्य को चौंसठ कलाओं में गिनना ठीक नहीं समझा था[२] "।

कल्पना का रूप : शुक्ल जी ने कल्पना पर विचार करते हुए कहा है -- "जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है । साहित्य वाले इसी को भावना कहते हैं और आज कल के लोग कल्पना[३] "। शुक्ल जी के अनुसार कल्पना दो प्रकार की होती है -- "विधायक और ग्राहक । कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है और श्रोता या पाठक में अधिकतर ग्राहक । अधिकतर कहने का अभिप्राय यह है कि जहां कवि पूर्ण चित्रण नहीं करता वहां पाठक या श्रोता को ही अपनी ओर से कुछ मूर्ति विधान करना पड़ता है[४] "। हमारे यहां कारयित्री और भावयित्री प्रतिमा को दो धारायें मानी गई हैं । पहली का सम्बन्ध है कवि से दूसरी का सम्बन्ध है पाठक या श्रोता से । शुक्ल जी ने अपने शब्दों में इसी बात को कहा है । शुक्ल जी के अनुसार -- "मानसिक रूप विधान का ही नाम संभावना या कल्पना है[५] "। मन के

---

१. चिन्तामणि, भाग १, पृ० १६२
२. वही, पृ० २४६
३. वही, पृ० १६१
४. वही, पृ० १६१-६२
५. वही, पृ० २४२

भीतर यह रूप विधान दो तरह का होता है । या तो यह कभी के प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का ज्यों का त्यों प्रतिबिंब होता है अथवा प्रत्यक्ष देखे हुए पदार्थों के रूप रंग गति के आधार पर खड़ा किया हुआ नया वस्तु व्यापार विधान । प्रथम प्रकार की आभ्यन्तर रूप प्रतीति स्मृति कहलाती है औरद्वितीय प्रकार की रूप योजना या मूर्ति विधान को कल्पना कहते हैं । रूप विधान के तीन प्रकार हुए -- १. प्रत्यक्ष रूप विधान, २. स्मृति रूप विधान , ३. कल्पित रूप विधान काव्य में कल्पित रूप-विधान का ही विशेष महत्व है[१] ।

डा० गुलाबराय का कहना है कि -- 'कल्पना द्वारा संश्लिष्ट किये गये चित्र भूत,भविष्य और वर्तमान तीनों काल के हो सकते हैं । मैं कालेज में बैठा हुआ घर पर जो हो रहा होगा उसकी कल्पना नहीं कर सकती हूं । यह वर्तमान किन्तु अप्रत्यक्ष के सम्बन्ध में कल्पना है । शिवाजी या शाहजहां औरंगज़ेब द्वारा कैदकिये जाने पर क्या सोचते होंगे , यह भूत की कल्पना है । भावी युद्ध कैसे होंगे -- यह भविष्य संबंधी कल्पना है[२] ।

कल्पित चित्र के अवयवों में समानुपात : वैज्ञानिकों के भयंकर आविष्कार भी इसी कल्पना के परिणाम हैं । अमुक अमुक वस्तुओं के संमीकरण से यह नई वस्तु बनी और इसका प्रभाव या परिणाम यह है -- यही तो है वैज्ञानिक प्रयोगों का रूप । काव्य और विज्ञान की कल्पना में भेद है । विज्ञान की कल्पना प्रयोगात्मक है.और इसका परिणाम स्थूल होता है । काव्य की कल्पना का परिणाम मानसिक रूप विधान है और वह कवि के इष्ट भाव की अभि-व्यक्ति को मार्मिकता प्रदान करते हुए सहानुभूति में योग देती है ।

कल्पना विधान के लिए सबसे आवश्यक है -- कल्पित चित्र के अवयवों में समानुपात । हम पांच पैर वाली गाय की भी कल्पना कर सकते हैं । किन्तु यह कल्पना सौन्दर्य सृष्टि में अक्षम है । जब चित्रों में इस प्रकार की असंगत बातें आ जायं तब

---

१. चिन्तामणि, भाग १, पृ० २४२-४३

२. कला सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० ७८

समझना चाहिए कि कल्पना की दुर्गति हो रही है। कल्पना की समन्वयकारिता पर विचार करते हुए अंग्रेज़ कवि समालोचक कालरिज ने वर्ड्सवर्थ काव्य के प्रयोग में कहा है -- 'इस समन्वय और जादू की शक्ति के लिए भी मैंने कल्पना शब्द का प्रयोग किया है। इसका धर्म है विरोधी या असम्बद्ध गुणों का एक दूसरे के साथ सन्तुलन अथवा समन्वय करना अर्थात् एकरूपता का अनेकरूपता के साथ, नवीन का प्राचीन के साथ, व्यष्टि का समष्टि के साथ, साधारण का विशेष के साथ, भाव का चित्र के साथ, ~~व्यक्ति~~ साधारण भावावेश का असीम संयम अथवा अनुक्रम के साथ अथवा चिर जागृत विवेक एवं स्वस्थ आत्मसंयम का दुर्दम उत्साह तथा गम्भीर भावुकता के साथ। इसी के बल पर कवि अनेकता में एकता ढूंढ निकालता है और विभिन्न विचारों एवं भावों को एक विशेष विचार अथवा भाव से अन्वित कर देता है[१]'।

कल्पना और भारतीय साहित्यशास्त्र : कल्पना की भारतीयता पर विचार करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा है -- 'संस्कृत अलंकार शास्त्र का स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति विषयक वादविवाद मेरे कथन की पुष्टि करेगा। चित्र को चमत्कृत करने की जिस शक्ति का उल्लेख हमारे यहां स्थान-स्थान पर मिलता है, यह और कुछ नहीं, शब्द भेद से काव्य का वही गुण है जिसे अंग्रेज़ रसाचार्य 'एडीसन' ने 'कल्पना का प्रसादन' कहा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य की आत्माध्वनि का आधार कल्पना के सिवाय क्या हो सकता है ? व्यंजनाश्रित प्रतिशत कल्पना के आश्रित है। सूर्यास्त हो गया - व व्यंजना का यह उदाहरण रसशास्त्रियों में बहुत प्रसिद्ध है। इसको सुनते ही प्रत्येक श्रोता अपने अनुकूल अर्थनिकाल लेगा --ग्वाला घर लौटने का, विद्यार्थी (आधुनिक) सिनेमा जाने का, अभिसारिका संकेत स्थल की ओर जाने का इत्यादि। मन की जिस शक्ति द्वारा यह अर्थ ग्रहणसम्भव है वही वास्तव में कल्पना है। इसी प्रकार गुणीभूत व्यंग्य काव्य में भी कल्पना का आधार निश्चित है[२]'।

---

१. विचार और अनुभूति, पृ० २३-२४

२. विचार और अनुभूति, पृ० २०-२१

कल्पना की भारतीयता पर विचार करते हुए डा० नगेन्द्र फिर कहते हैं-- भारतीय साहित्य शास्त्र का अप्रस्तुत विधान यही कल्पना है । साम्य और वैषम्य मूलक जितने अलंकार हैं उनका प्रधान साधन कल्पना ही है। वस्तु और भाव के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिए कल्पना का योग अनिवार्य है । उपमा रूपक आदि साम्य मूलक अलंकारों में साम्य की स्थापना और विरोध , विषम, विभावना आदि वैषम्य-मूलक प्रयोगों में वैषम्य की धारणा कल्पना के आश्रित की जाती है । अतिशयोक्ति में भी यही बात है । साम्य में समानधर्मा वस्तुओं का और अतिशयोक्ति में दूर स्थित वस्तुओं का समीकरण करना पड़ता है[१] । देखिये --

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर वक्ष पर विपुल।
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएं हों ज्यों कहीं पार[२] ।।

राम के विशाल कन्धों पर उनकी जटा खुलकर इस तरह फैल गई है, मानों पर्वत की उन्नत चोटियों पर सन्ध्या का अन्धकार उतर आया हो । यहां पर राम के स्कन्ध पर्वत की चोटियां हैं और केश सन्ध्यान्धकार ।

लेकिन कहीं-कहीं पर अनुपात का ध्यान न रखने के कारण समीकरण हास्यास्पद हो जाता है । स्याही की बूंद के लिए -- गोल ताल सा नभ से कूद-- अच्छी उक्ति नहीं है ।

भाषा के लाक्षणिक प्रयोग भी कल्पना के ही आधीन होते हैं --देखिये--

नीरव मुरली कलरव चुप
अलि कुल थे बन्द नलिन में ।
कालिन्दी वही प्रणय की
इस तममय हृदय पुलिन में[३] ।।

---

१. विचार और अनुभूति, पृ० २२
२. अपरा (राम की शक्ति पूजा), महाप्राण निराला
३. आंसू - प्रसाद

प्रतीक विधान भी कल्पना का ही एक रूप है । देखिये --

धूल की ढेरी में अनजान ।
छिपे हैं मेरे मधुमय गान ।।

धूल की ढेरी का अर्थ असार संसार और मधुमय गान का अर्थ सुन्दर मधुर वस्तुएं हैं। यदि हम `कल्पना` शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि कल्पना शब्द क्लृप् धातु से बना है जिसका अर्थ है -- सृष्टि करना । हमारे यहां सृष्टि के देवता ब्रह्मा माने गये हैं । कवि के इसी सृजन धर्म को ध्यान में रखते हुये उसे ब्रह्मा कहते हैं । कवि सृष्टि करता है । उसकी सृष्टि को देखकर सहृदय पाठक चिल्ला उठता है -- अदृष्ट पूर्व हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा ।

कल्पना और भाव : कल्पना और भाव के सम्बन्ध पर विचार करते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है -- `काव्य के प्रयोजन की कल्पना वही होती है जो हृदय की प्रेरणा से प्रवृत्त होती है और हृदय पर प्रभाव डालती है । हृदय के मर्म स्थल का स्पर्श तभी होता है जब जगत या जीवन का कोई सुन्दर रूप , मार्मिक दशा या तथ्य मन में उपस्थित होता है । ऐसी दशा या तथ्य की चेतना से मन में कोई भाव जगता है जो उस दशा या तथ्य की मार्मिकता का पूर्ण अनुभव करने और कराने के लिये उसके कुछ चुने हुए ब्यौरों की मूर्त भावनाएं खड़ा करता है`[१] ।

कवि में कल्पना और भाव की समाहार शक्ति जितनी ही बड़ी होगी वह उतना ही बड़ा कवि होगा । संस्कृत के कवि कालिदास में कल्पना और अनुभूति का योग है । बाण के काव्य में कल्पना वैभव बहुत अधिक है, लेकिन कल्पना की अतिरंजना और अनुभूति की शिथिलता उन्हें कालिदास से पीछे कर देती है । कालिदास की कल्पनाओं में हृदय लिपटा हुआ है ।

नव वस्तु का निर्माण करने वाली शक्ति प्रतिभा कही जाती है । कल्पना की दुनिया में कवि मूंगें के पेड़ से मोती तोड़ सकता है । सफेद हाथी की सवारी कर सकता है । एक हाथी के दो सूंड़ देख सकता है, सन्ध्या के बाद अरुणोदय

---

१. चिन्तामणि, भाग १, पृ० २६५.

करा सकता है । हंसी के ढेर लगा सकता है , आकाश विटप पर घूमलता चढ़ते देख सकता है । कल्पना के ही कारण उक्तियों में नवीनता आती है । काव्य में बासी-पन की गन्ध नहीं आने पाती। हरदेश में , हर युग में सूर्योदय, सूर्यास्त, प्रेम, युद्ध, नदी, पर्वत आदि काव्य के विषय रहे हैं और आगे भी रहेंगे ही। लेकिन एक ही विषय पर लिखे गये सब वर्णन एक ही तरह के नहीं हैं । अलग अलग वर्णनों में , भिन्न-भिन्न परिमाण में उनके कवियों की आत्माओं का रस मिला हुआ है। प्रत्येक कवि की प्रतिभा एवं अनुभूति की अपनी एक सीमा होती है । उसी सीमा के भीतर वह वर्णन करता है । एक ही आलंबन के सम्बन्ध में कही गई विभिन्न काव्यों की उक्तियों में भेद होने का क्या कारण है ? वास्तव में जब तक यह उक्ति भेद रहेगा तब तक काव्य नवीन एवं आस्वाद्य बना रहेगा। हिमालय के सम्बन्ध में बहुत सी उक्तियां सामने आई । पर सर्वोत्तम उक्ति है --कालिदास की । वे कहते हैं -- यह हिमाच्छादित कैलाश नहीं, शिव की हंसी का ढेर है । ताज महल की लंबाई चौड़ाई सब नाप सकते हैं । यह कितने दिन में बना कितने रुपये खर्च हुए ? कितने ईंटें लगे ? किस दुकान से चूना आया ? कितना मन पानी चूने में पड़ा ? जानने वाले यह सब जान लेंगे । लेकिन यह सब ताजमहल का वास्तविक परिचय नहीं है । ताजमहल का वास्तविकपरिचय रवीन्द्र नाथ नामक वह व्यक्ति जान सका जिसने लिखा -- ताजमहल काल के कपोलपर आंसू की एक बूंद है । कहने का आशय यह है कि काव्य में उक्तियों को मार्मिक बनाने वाले उपकरणों को जुटाने में कवि कितना सफल रहा-यही काव्य की कसौटी है ।

आचार्य पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कल्पना और अनुभूति के सम्बन्ध पर विचार करते हुए लिखा है -- "कल्पना की अवस्था में वह इस जगत् के समानान्तर जगत् की सृष्टि करता है जिसमें इस जगत् की सुन्दरताएं और विभदृशताएं नहीं रहती, पर अनुभूति की अवस्था में उसके पैर इस दुनिया पर ही जमें रहते हैं । वह इसे छोड़ नहीं सकता[१]"।

ऐसी कल्पना जो किसी भाव को जागृत न कर सके, जो हमारे हृदय के किसी कोने को झनझना न सके, वह काव्य की कल्पना नहीं है । विश्व का सबसे

---

१. साहित्य का साथी, पृ० ६२

बड़ा कवि वही है जो भाव को कल्पना के रंगीन परिधान में लपेट न सके । जिस प्रकार मांस के टुकड़े के साथ रक्त का आना स्वाभाविक है ; उसी प्रकार काव्य के चित्र के साथ भाव का लगाव रहेगा ही । जब हम अप्रस्तुत विधान करते हैं तब इसका मतलब होता है हमारे सामने कुछ प्रस्तुत है और वह प्रस्तुत भाव के सिवाय कुछ नहीं है ।

ठाकुर के काव्य में कल्पना विधान : ठाकुर के काव्य में कुछ ऐसे कल्पना प्रसूत चित्र हैं जो महा-कवियों में ही पाये जाते हैं । कुछ चित्रों को लेकर यहां विचार किया जायगा :-

१. दीपति के दीप तखान को बखानै कौन
पांचौं अंगुरिन मैन सर पांचौ पारे हैं[१] ।।

पैर के तलवों की प्रशंसा में कवि कहता है कि ये दीप्ति के लिये दीपक का काम करते हैं । इसको पढ़कर गोस्वामी जी की यह पंक्ति सामने आ जाती है -- कवि गृह दीप सिखा जनु बरई ।

२. मुग्धा की दृष्टि से उत्पन्न नायक की पीड़ा की व्यंजना के लिये रोम-रोम को पीड़ित बतलाना --अच्छी उक्ति है --

ठाकुर कहत कहूं चोट को न चिन्ह कछू
बिन देखे नैनं चैन पलहूं न पाइए ।
एक जागा होय तहां औषधि लगाऊं वीर
रोम रोम पीर कहां औषधि लगाइए[२] ।।

३. राधा कृष्ण की अंजुलि में अपना मुख रख देती हैं । कवि कहता है कि चन्द्रमा कमल की पालकी पर सवार है । यह ठाकुर के काव्य की सर्वोत्कृष्ट कल्पना है --

राधिका स्याम लखेपलका पर कापर जाति कही कवि हाल की।
आपने हाथ से भावती लेकर प्रीति से आजुरी जोरी गुपाल की।। क्रमशः- -

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ४
२. वहीं, छंद सं० ३१

ठाकुर तापे धरो मुख बाल ने को बरनै उपमा वहि काल की ।
मानन में तिय आनन यों दिपै चन्द चढ़ै मनो कंज की नालकी[१] ।।

४. वरुनीन में नैन झुकैं उझकैं मनो खंजन प्रेम के जाले परे ।
दिन औधि के कैसे गनो सजनी अंगुरीन के पोरन छाले परे[२] ।।

बरौनियों के बीच विरहिणी के नेत्रों की दशा वही है जो जाल में परे खंजन की होती है । अंगुली में छाला पड़ने वाली बात कुछ ऊहात्मक हो गई है । ठाकुर के काव्य में केवल यही एक ऐसी उक्ति है जो ऊहा के निकट है । ऊहा में मार्मिकता घट जाती है । यदि इसे हम ऊहा न कहकर अतिशयोक्ति कहें तो अच्छा होगा। अतिशयोक्ति मे अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादिनी नही हो पाती । कोई अतिशयोक्ति बहुत मार्मिक नहीं होती ।

५. काम कृपाण की डोरी लेकर चपला का मेघों को नापना -- कैसी सुन्दर कल्पना है --

काम कृपाण की डोरी लिए चपला फिरै मेघन मापति सी[३] ।।

६. मंद मंद देखिए नखत बदरान मांझ
मानो चांधियाने चन्द ढूंढ़त फिरत हैं[४] ।

बादलों के बीच नक्षत्रों का प्रकाश देखकर कवि कहता है कि ये चन्द्रमा को खोज रहे हैं । किसी को बहुत देर तक खोजते रहें तो नेत्रों की उत्फुल्लता कुछ घट जाती है।

७. ठाकुर कहत भूमि विकल विहाल परी
देखिए गुपाल ताहि उपमान जुई।
रति के भंडार ते दुरायकै चोराय मानो
काहू आनि मंदिर में रूप रासि छुई[५] ।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ४०
२. वही, छंद सं० ७८
३. वही, छंद सं० १११
४. वही, छंद सं० ११६
५. वही, छंद सं० ८५

भूमि पर अस्त व्यस्त पड़ी बालिका के लिए कवि कहता है -- मानो गति के सौन्दर्य भाण्डार से चुराई गई रूपराशि है। वह रूप राशि पृथिवी पर पड़ी है। चुराई हुई वस्तु कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, श्रीहीन होती है। यह कवि की सूक्ष्म दृष्टि है।

८. श्याम का रंग बरसाने वाली बालिका की आंखों में है और बरसाने वाली बालिका की आंखों में श्याम का चित्र है। इसके लिए कवि की कल्पना का प्रसार देखिये --

अपने अपने सुठि गेहन में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री।
अंगनान में भीजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जाऊं पै री।।
ठाकुर दोउन की रुचि सोंरंग ह्वै उमड़े दोउ ठांव पै री।
सखी कारी घटा बरसै बरसाने गोरी घटा नंद गांव पै री[1]।।

९. पंखहीन से कभी उड़ने का भय नहीं होता। किन्तु कृष्ण व्रज से मथुरा उड़ गये। कृष्ण ने पंखहीनों पर भी अविश्वास उत्पन्न कर दिया --

काठ ते ऐते कठोर भए आइ वा दिन कोरे हुते मधु माखन।
बातें बनाइ कहैं करके मिलके बिछुरे उड़िके बिनु पांखन[2]।।

---o---

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ४१
२. वही, छंद सं० ८४